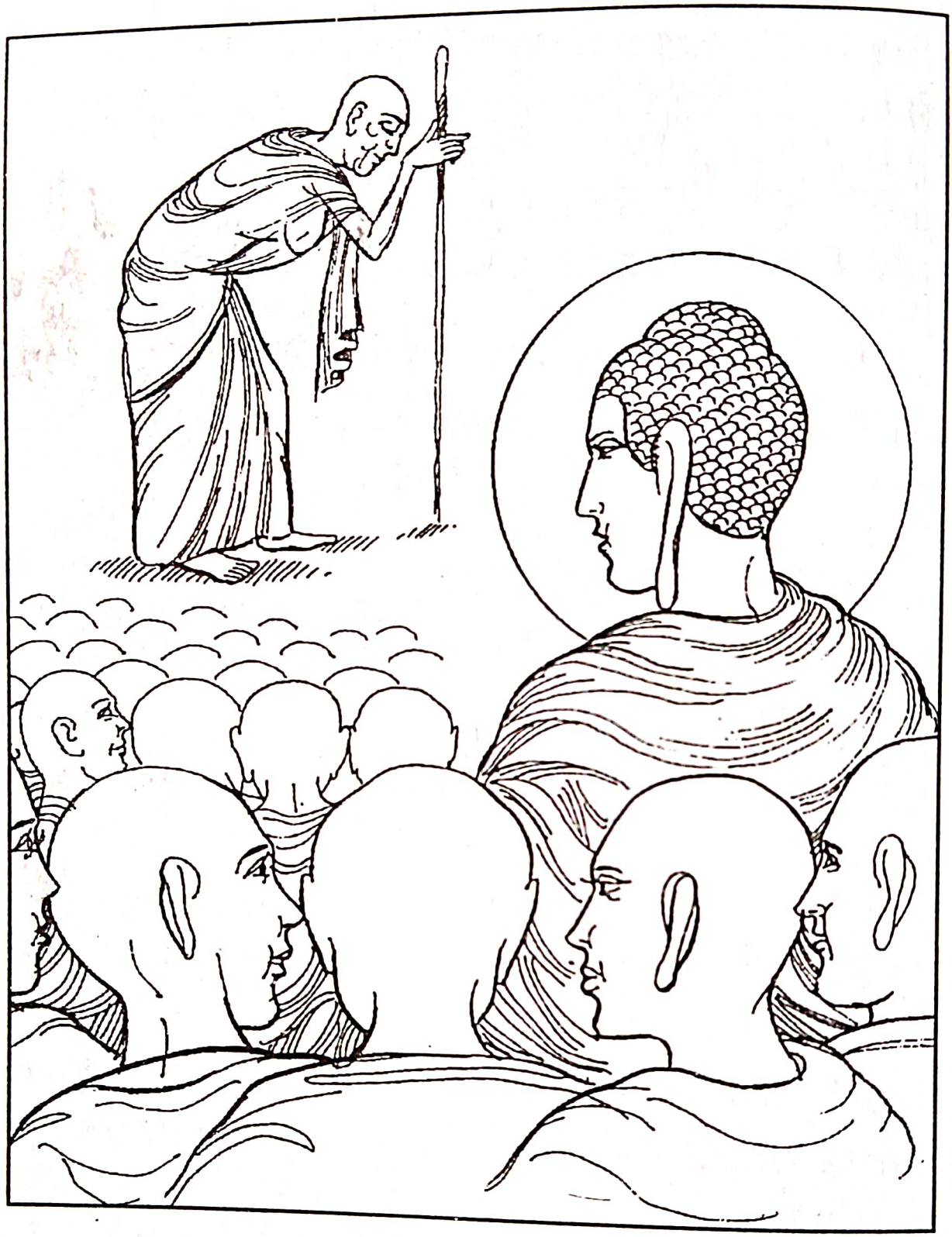

## 45. सोणाथेरीगाथा

सावत्थी के एक कुलीन परिवार में **सोणा** का जन्म हुआ था। कुलीन घर में ही उसका विवाह भी हुआ। विवाहोपरान्त वह दस सन्तानों की माता हुई, इसलिए वह **'बहुत पुत्रों वाली'** (बहुपुत्तिका) के नाम से भी प्रसिद्ध हो गई। उसके परिवार में

पहले से ही बुद्ध के प्रति बहुत आस्था थी। वे बुद्ध के व्यक्तित्व से बहुत ही प्रभावित थे। उसका पति बौद्ध भिक्खुसंघ में प्रव्रजित हो गया था। पति के कारण सोणा के मन पर भी भगवान् बुद्ध के मानवीय विचारों का, अनासक्ति का प्रभाव था। पति के प्रव्रजित होने पर उसने सारी धन-सम्पत्ति पुत्रों में वित्रित कर दी, अपने लिए कुछ नहीं रखा। अल्पकाल में ही पुत्र और उनकी बहुएँ उसका निरादर करने लगीं। "जिस घर में मेरा सम्मान नहीं, उसमें रह कर क्या करूँ ?" ऐसा सोचकर वह भिक्खुणीसंघ में प्रविष्ट हो गई।

चूँकि वृद्धावस्था में उसने संसार त्याग किया था, इसलिए अविचलित चित्त-शान्ति को प्राप्त करने के लिए बड़ा जबर्दस्त प्रयास करना पड़ा, किन्तु वह परीक्षा में सफल रही। वह रात-रात भर जाग कर ध्यान-साधना के अभ्यास में लगी रहती थी। भगवान् बुद्ध ने उसके दृढ़ पुरुषार्थ की प्रशंसा करते हुए कहा था कि इस प्रकार के जीवन का एक दिन भी शत वर्ष के दीर्घ आयुष्य से अधिक श्रेयस्कर है। दृढ़ प्रयास करने वाली भिक्खुणी-साधिकाओं में भगवान् ने सोणा को अग्रणी उद्घोषित किया था। अर्हत्व-प्राप्ति के उल्लास में सोणा अपने जीवन को प्रत्यवेक्षण करती हुई गाती है—

**दस पुत्ते विजायित्वा, अस्मिं रूपसमुस्सये।**
**ततोहं दुब्बला जिण्णा, भिक्खुनिं उपसङ्कमिं॥ 102 ॥**

**अर्थ**— *मैंने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के मिलन-क्षेत्र इस शरीर में, दस पुत्रों को पैदा किया है। फिर दुर्बल और जीर्ण होकर मैं एक भिक्खुणी के पास गई।*

**सा मे धम्ममदेसेसि, खन्धायतनधातुयो।**
**तस्सा धम्मं सुणित्वान, केसे छेत्वान पब्बजिं॥ 103 ॥**

**अर्थ**– उस भिक्खुणी ने मुझे स्कन्ध, आयतन और धातुओं का उपदेश दिया। उसके धम्मोपदेश को सुन कर मैं अपने सिर के बाल कटवा कर प्रव्रजित हो गई।

**तस्सा मे सिक्खमानाय, दिब्बचक्खु विसोधितं।**
**पुब्बेनिवासं जानामि, यत्थ मे वुसितं पुरे॥ 104 ॥**

**अर्थ**– उस भिक्खुणी की शिष्या होकर साधना करते हुए मैंने अपने चक्षुओं को शोधित कर दिव्य बना लिया। आज मैं अपने पूर्व जीवन को जानती हूँ। जहाँ-जहाँ मैंने जन्म धारण किए, उनका स्मरण करती हूँ।

**अनिमित्तञ्च भावेमि, एकग्गा सुसमाहिता।**
**अनन्तराविमोक्खासिं, अनुपादाय निब्बुता॥ 105 ॥**

**अर्थ**– चित्त में एकाग्रं, समाधिनिष्ठ, होकर मैं अनिमित्त (ध्यान) की भावना करती हूँ। संसार के सारे पदार्थों को मैं अनित्य, दुक्ख और अनात्म के रूप में देखती हूँ। किसी भी वस्तु का उपादान न कर मैंने निर्वाण में प्रवेश किया है, मुझे विमोक्ष-सुख प्राप्त हुआ है।

**पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता, तिट्ठन्ति छिन्नमूलका।**
**धि तवत्थु जरे जम्मे, नत्थि दानि पुनब्भवो'ति॥ 106 ॥**

**अर्थ**– पंच-स्कन्धों का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करके मैंने उनकी जड़ों को काट दिया हैं। (उनका सिलसिला अब संसार के रूप में कैसे प्रवाहित होगा ?) किसी भी स्थितिशील (आधार वाली) वस्तु के लिए अब मेरे हृदय में इच्छा नहीं रही। मैं पुनर्जन्म-हीन हूँ। अब मेरा दूसरा जन्म नहीं होने वाला है।